

॥ श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ॥

अध्याय 5: कर्मसंन्यासयोग

1/2 (श्लोक 1-13), रविवार, 07 मई 2023

विवेचक: गीता विद्वषी सौ वंदना जी वर्णेकर

यूट्यूब लिंक: <https://youtu.be/6vhPFozxTyg>

कर्मयोगी के लक्षण

परम पूज्य स्वामी गोविंददेव गिरि जी महाराज के सूक्ष्म सानिध्य में आज पञ्चम अध्याय का शुभारम्भ दीप प्रज्वलन, प्रार्थना, भक्ति गीत, माँ सरस्वती वन्दना तथा ज्ञानेश्वर महाराज जी की कृपा आशीर्वाद प्राप्त करते हुए हुआ। यह हमारा परम सौभाग्य है कि हमें श्री गीता जी का आशीर्वाद प्राप्त हुआ और इस अनुपमेय आशीष से हम जीवन पथ पर निरन्तर अग्रसर हो रहे हैं। श्री गीता जी की प्रेम की धारा के साथ अपने चिन्तन की धारा को एकाकार करते हुए गीता ज्ञानमय शिविर में जो सुना है, उन कणों को आज आपके सामने रखते हैं क्योंकि यह अभिभूत करने वाला अध्याय भी है और अनुभूति कराने वाला अध्याय भी है।

5.1

अर्जुन उवाच सन्न्यासं(ङ्) कर्मणां(ङ्) कृष्ण, पुनर्योगं(ञ्) च शंससि। यच्छ्रेय एतयोरेकं(न्), तन्मे ब्रूहि सुनिश्चितम्॥5.1॥

अर्जुन बोले - हे कृष्ण ! (आप) कर्मों का स्वरूप से त्याग करने की और फिर कर्मयोग की प्रशंसा करते हैं। (अतः) इन दोनों साधनों में जो एक निश्चित रूपसे कल्याण कारक हो, उसको मेरे लिये कहिये

विवेचन : हमने देखा किस प्रकार से अर्जुन को भगवान ने ज्ञान की महत्ता बताई। लौकिक ज्ञान में हम उपजीविका का ज्ञान प्राप्त करते हैं। यहाँ पर बात हो रही है स्वयं के ज्ञान की अर्थात् व आत्मज्ञान की चर्चा हो रही है। जीव, जगत और परमेश्वर आपस में इनका क्या सम्बन्ध है ?

अर्जुन भगवान से पूछते हैं कि एक ओर तो आप कर्मों के संन्यास की बात करते हैं दूसरी ओर कर्मयोग की प्रशंसा करते हैं। इन दोनों में जो मेरे लिए श्रेयस्कर हो उसे कहिये। भगवद्गीता में निःश्रेयस की प्राप्ति का मार्ग बताया गया है।

5.2

श्रीभगवानुवाच सन्न्यासः(ख्) कर्मयोगश्च, निःश्रेयसकरावुभौ।

तयोस्तु कर्मसंन्यासात्, कर्मयोगो विशिष्यते ॥5.2॥

श्रीभगवान् बोले - संन्यास (सांख्ययोग) और कर्मयोग दोनों ही कल्याण करने वाले हैं। परन्तु उन दोनों में (भी) कर्मसंन्यास- (सांख्ययोग) से कर्मयोग श्रेष्ठ है।

विवेचन : श्री भगवान् कहते हैं - हे अर्जुन! कर्मसंन्यास और कर्मयोग ये दोनों ही कल्याणकारक हैं। वे अर्जुन के लिए कर्मयोग को श्रेयस्कर बताते हैं। ये दोनों एक ही गन्तव्य की प्राप्ति के मार्ग हैं।

सन्त तुकाराम जी महाराज कहते हैं -

अधिकार तैसा करू उपदेश । साहे ओझे त्यास तेची द्यावे ॥ १ ॥

अर्थात् प्रवृत्ति, क्षमता, योग्यता के अनुसार ही ज्ञान दिया जाना उचित है।

जैसे एक माँ व्यायाम करने वाले पुत्र के लिए पौष्टिक भोजन बनाती है और रोगी पुत्र के लिए पथ्य का आहार बनाती है।

एक बार ब्रह्माजी के पास देव, दानव व मानव तीनों पहुँचे। उन्होंने कल्याण हेतु कुछ प्रदान करने की प्रार्थना की। ब्रह्माजी ने तीनों को एक अक्षर **द** प्रदान किया।

जिसे देवों के लिए वो **दमन**(इन्द्रियों पर), दानवों के लिए **दया** और मानवों के लिए **दान** बताया गया है।

5.3

**ज्ञेयः(स्) स नित्यसंन्यासी, यो न द्वेष्टि न काङ्क्षति ।
निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो, सुखं(म्) बन्धात्प्रमुच्यते ॥5.3॥**

हे महाबाहो ! जो मनुष्य न (किसी से) द्वेष करता है (और) न (किसी की) आकांक्षा करता है; वह (कर्मयोगी) सदा संन्यासी समझने योग्य है; क्योंकि द्वन्द्वों से रहित (मनुष्य) सुखपूर्वक संसार-बन्धन से मुक्त हो जाता है।

विवेचन: अर्जुन फिर से यह बात नहीं समझ पाए और अपने मन में प्रश्न करने लगे कि भगवान् हमको समझा रहे हैं या उलझा रहे हैं? मैं इस युद्ध भूमि में खड़ा हूँ, अपनों से युद्ध करने के लिए डर रहा हूँ। परिजनों के विनाश से भयभीत हूँ और इसलिये यह युद्धभूमि छोड़ना चाहता हूँ। भगवान् से मैंने अपने जीवन का श्रेय पूछा तो भगवान् मुझे पुनः युद्ध करने के लिए प्रेरित कर रहे हैं।

हे अर्जुन ! तुम संन्यास शब्द का अर्थ तुम जान लो। नित्य संन्यासी कैसा होना चाहिए। जो अन्तरङ्ग से लाभ -हानि, अनुकूलता प्रतिकूलता, राग-द्वेष आदि से मुक्त हो गया वही नित्य संन्यासी है।

ज्ञानेश्वर जी महाराज इस बारे में बहुत सुन्दर ओछ कहते हैं -

**आणि मी माझें ऐसी आठवण । विसरलें जयाचें अंतःकरण ।
पार्था तो संन्यासी जाण । निरंतर ॥ २० ॥**

अर्थात् जिसके अन्तःकरण में मैं मेरा आदि की भावनाएँ लेशमात्र भी नहीं रहती, हे पार्थ ! उसी मनुष्य को नित्य संन्यासी जानना चाहिए।

उसे अपने वस्त्र भी बदलने की आवश्यकता नहीं है, ना ही अपना स्थान छोड़ने की। यदि किसी को हमने कोई वस्तु उपहार में दे दी तो उसे भूलते नहीं। जो हमने किसी को दे दिया उसकी याद को भी हमें भुला देना चाहिए। यहाँ तो जीवन भी है उसको

भूल जाना चाहिए।

यहाँ एक दैनिक जीवन का उदाहरण देकर बताया गया। किसी भी कार्यक्रम में धार्मिक पुस्तकें भेंट करने के स्वभाव के कारण एक ठेले पर पुस्तक विक्रेता से वार्तालाप में उनसे पूछा गया कि आप इतनी पुस्तकों का क्रय करते हो क्या आप मुझे संक्षिप्त में बता सकते हो कि इसमें क्या लिखा है। विदुषी जी का उत्तर था कि इतने बड़े उपनिषद् का सार संक्षिप्त में बताना तो कठिन है। इस पर पुस्तक विक्रेता ने सार बताने की आज्ञा माँगते हुए कहा - आप सभी लोग जो मैं, मेरा कहते रहते हैं यह गीता जी के ग्रन्थ में छोड़ने के लिए कहा गया है। अपितु सब परमात्मा का है यह मानने के लिए कहा गया है।

5.4

साङ्ख्ययोगौ पृथग्बालाः(फ), प्रवदन्ति न पण्डिताः। एकमप्यास्थितः(स) सम्यग्, उभयोर्विन्दते फलम्॥5.4॥

बेसमझ लोग सांख्ययोग और कर्मयोग को अलग-अलग (फल वाले) कहते हैं, न कि पण्डितजन; (क्योंकि) (इन दोनों में से) एक साधन में भी अच्छी तरह से (स्थित) मनुष्य दोनों के फलरूप (परमात्मा को) प्राप्त कर लेता है।

विवेचन: श्रीभगवान जी कहते हैं कि हे अर्जुन! एक ही जगह पर जाने के दो मार्ग हैं--कर्मसंन्यास और कर्मयोग। कर्म से उस ईश्वर के साथ एकाकार होना और जो फल होगा वह भगवान का प्रसाद समझकर प्राप्त करना। यह दोनों मार्ग एक ही जगह ले जाते हैं परन्तु इन दोनों में मैं तुम्हारे लिए कर्मयोग को श्रेयस्कर मानता हूँ।

जो बाल बुद्धि के लोग हैं वे इनको पृथक् पृथक् समझते हैं। सांख्ययोग और कर्मयोग दोनों ही मार्ग कल्याणकारक हैं। ज्ञान श्रेष्ठ है परन्तु आगे चल के वो कर्मयोग की सीढ़ी द्वारा ही प्राप्त होगा।

5.5

यत्साङ्ख्यैः(फ) प्राप्यते स्थानं(न), तद्योगैरपि गम्यते। एकं(म) साङ्ख्यं(ज) च योगं(ज) च, यः(फ) पश्यति स पश्यति॥5.5॥

सांख्ययोगियों के द्वारा जो तत्त्व प्राप्त किया जाता है, कर्मयोगियों के द्वारा भी वही प्राप्त किया जाता है। (अतः) जो मनुष्य सांख्ययोग और कर्मयोग को (फलरूप में) एक देखता है, वही (ठीक) देखता है।

विवेचन: अर्जुन तुम गृहस्थाश्रम में हो और तुम अपना परिवार भी नहीं छोड़ सकते। भगवद्गीता का श्रोता और भगवद्गीता का वक्ता दोनों ही गृहस्थाश्रम में हैं अर्थात् भगवान श्री कृष्ण और अर्जुन भी दोनों गृहस्थाश्रम में ही हैं। भगवद्गीता के लिए जो बात कही गई कि इसको पढ़ने के लिए संन्यास लेना होगा, यह गलत है।

जिस प्रकार एक माँ समझती है कि अपने प्रत्येक बेटे के लिए क्या उचित होगा वह उसी प्रकार की रसोई बनाए इसी तरह से भगवद्गीता में श्रीभगवान जी अर्जुन को कर्मयोग की प्राप्ति के लिए सबसे आसान मार्ग समझाने का प्रयास करते हैं। कोई बच्चा यदि कसरत करने वाला बालक है उसके लिए अलग रसोई और कोई बीमार बच्चा है तो उसके लिए अलग रसोई माँ बनाएगी, उसी प्रकार हम भगवद्गीता को भी अपनी माँ कहते हैं।

कुछ लोग क्रिया प्रधान होते हैं, कुछ लोग ज्ञान प्रधान होते हैं। अर्जुन के क्रिया प्रधान होने के कारण कर्मयोग ही उनके लिए श्रेयस्कर है।

5.6

**संन्यासस्तु महाबाहो, दुःखमाप्तुमयोगतः।
योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म, नचिरेणाधिगच्छति॥5.6॥**

परन्तु हे महाबाहो ! कर्मयोग के बिना संन्यास सिद्ध होना कठिन है। मननशील कर्मयोगी शीघ्र ही ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है।

विवेचन: जिस प्रकार कर्मयोग में सुगमता है, सरलता है और सुरक्षा भी है, अपनी जगह को छोड़ना नहीं है बस केवल अपनी जगह पर रहते हुए कर्मयोग में परिणित होना है। अपने कर्म को परमात्मा के सङ्ग जोड़ने का सुन्दर अभ्यास करना है जिसके लिए मैं सृष्टि में आया हूँ अथवा जिसने मुझे सृष्टि में भेजा है।

5.7

**योगयुक्तो विशुद्धात्मा, विजितात्मा जितेन्द्रियः।
सर्वभूतात्मभूतात्मा, कुर्वन्नपि न लिप्यते॥5.7॥**

जिसकी इन्द्रियाँ अपने वश में हैं, जिसका अन्तःकरण निर्मल है, जिसका शरीर अपने वश में है (और) सम्पूर्ण प्राणियों की आत्मा ही जिसकी आत्मा है, (ऐसा) कर्मयोगी (कर्म) करते हुए भी लिप्त नहीं होता।

विवेचन: लाभ-हानि, तेरा-मेरा, यश-अपयश, मान-अपमान, इसमें एक हम चाहते हैं और एक की हम कामना नहीं करते हैं। भगवान कहते हैं कि अनुकूलता हमें चाहिए। हम मनुष्य हैं और प्रतिकूलता हमें जीवन में नहीं चाहिए, उस से हम डरते हैं। जिसका अन्तरङ्ग इन दोनों बातों से मुक्त हो जाए, ऐसा ही मनुष्य सुखपूर्वक अपने बन्धन से मुक्त हो सकता है।

5.8, 5.9

**नैव किञ्चित्करोमीति, युक्तो मन्येत तत्त्ववित्।
पश्यञ्शृण्वन्स्पृशञ्जिघ्रन्, नश्नन्गच्छन्स्वपञ्श्वसन्॥5.8॥
प्रलपन्विसृजन्गृह्णन्, नुन्मिषन्निमिषन्नपि।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु, वर्तन्त इति धारयन्॥5.9॥**

तत्त्व को जानने वाला सांख्ययोगी देखता हुआ, सुनता हुआ, छूता हुआ, सूँघता हुआ, खाता हुआ, चलता हुआ, ग्रहण करता हुआ, बोलता हुआ, (मल-मूत्र का) त्याग करता हुआ, सोता हुआ, श्वास लेता हुआ (तथा) आँखें खोलता हुआ (और) मूँदता हुआ भी सम्पूर्ण इन्द्रियाँ इन्द्रियों के विषयों में बरत रही हैं - ऐसा समझकर 'मैं स्वयं कुछ भी नहीं करता हूँ' - ऐसा माने। (5.8-5.9)

विवेचन: पाँचवें अध्याय के श्लोक क्रमांक आठ और नौ- ये दो श्लोक गीता जी के महत्त्वपूर्ण श्लोक माने जाते हैं।

तत्त्व को जानने वाला सांख्ययोगी तो देखता हुआ, सूँघता हुआ, सुनता हुआ, स्पर्श करता हुआ, भोजन करता हुआ, श्वास लेता हुआ, बोलता हुआ, आँखें खोलता हुआ, सारे इन्द्रियों के कार्यों को दृष्टा भाव से देखता है। मैं इसमें कुछ नहीं कर रहा हूँ स्वमेव हो रहा है ऐसा मानता है।

ठाकुर रामकृष्ण परमहंस जी को जीवन के अंतिम दिनों में गले का कैंसर हो गया था। इससे उन्हें बोलने व भोजन करने में भी बड़ा कष्ट हो रहा था। उनके प्रिय शिष्य स्वामी विवेकानन्द जी ने उनसे आग्रह किया कि वे देवी माँ से गले के रोग को ठीक करने का उपाय माँग लें तब परमहंस जी ने कहा कि इन नाशवान वस्तुओं की ओर से ध्यान हटा कर तो देवी माँ की ओर ध्यान लगा है अब पुनः इस नाशवान शरीर की ओर ध्यान ले जाना उचित नहीं।

5.10

**ब्रह्मण्याधाय कर्माणि, सङ्गं(न) त्यक्त्वा करोति यः।
लिप्यते न स पापेन, पद्मपत्रमिवाम्भसा॥5.10॥**

जो (भक्तियोगी) सम्पूर्ण कर्मों को परमात्मा में अर्पण करके (और) आसक्ति का त्याग करके (कर्म) करता है, वह जल से कमल के पत्ते की तरह पाप से लिप्त नहीं होता।

विवेचन: जो पुरुष सब कर्मों को परमात्मा को अर्पण कर एवं आसक्ति को त्याग कर कर्म करता है, वह जल में कमल के पत्ते की भाँति पाप से लिप्त नहीं होता।

इस विषय में ज्ञानेश्वर महाराज जी ने एक सुन्दर ओवी कही है--

**तो कर्म करी सकळें । परी कर्मबंधा नाकळे ।
जैसें न सिंघे जळीं जळें । पद्मपत्र ॥ ५० ॥**

अर्थात् कर्मयोगी सब कर्म करता है, पर जैसे जल में रहते हुए भी कमल - पत्र उस जल से नहीं भीगता, वैसे ही कर्म करते हुए भी कर्मयोगियों के साथ कर्म का लेप नहीं होता।

स्वामी विवेकानन्द जी के शिकागो प्रवास के समय की घटना है। शिकागो भाषण के उपरान्त एक बार अपने शिष्यों से तट पर भ्रमण करते हुए वार्तालाप कर रहे थे। उनके एक शिष्य की शङ्कसमाधान करते हुए उन्होंने समुद्र में तैरते हुए एक जहाज का उदाहरण देते हुए समझाया कि ये सांसारिक सुख इस समुद्र के जल की भाँति है। यदि यह जल रूपी सुख इस जीवन रूपी जहाज में प्रवेश कर गया तो साधना का जहाज डूब जाएगा।

5.11

**कायेन मनसा बुद्ध्या, केवलैरिन्द्रियैरपि।
योगिनः(ख) कर्म कुर्वन्ति, सङ्गं(न) त्यक्त्वात्मशुद्धये॥5.11॥**

कर्मयोगी आसक्ति का त्याग करके केवल (ममता रहित) इन्द्रियाँ, शरीर, मन और बुद्धि के द्वारा अन्तःकरण की शुद्धि के लिये ही कर्म करते हैं।

विवेचन: कर्मयोगी ममत्व बुद्धि रहित होकर केवल इन्द्रिय, मन, बुद्धि और शरीर द्वारा भी आसक्ति का त्याग करते हुए अन्तःकरण की शुद्धि के लिए कर्म करते हैं।

5.12

**युक्तः(ख) कर्मफलं(न) त्यक्त्वा, शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम्। अयुक्तः(ख) कामकारेण, फले सक्तो
निबध्यते॥5.12॥**

कर्मयोगी कर्म फल का त्याग करके नैष्ठिकी शान्ति को प्राप्त होता है। (परन्तु) सकाम मनुष्य कामना के कारण फल में आसक्त होकर बँध जाता है।

विवेचन: श्री भगवान कहते हैं कि भोजन करना भी कर्म है, देखना भी कर्म है, पढ़ना भी कर्म है, हमारी इन्द्रियाँ भी अपने कर्म करती रहेंगी तो फिर हम क्या छोड़ेंगे? अतः हमारे लिए कर्मयोगी का मार्ग ही सरल है।

कर्मयोगी कर्मों के फल का त्याग कर के भगवत्प्राप्तिरूप शान्ति को प्राप्त होता है। सकाम पुरुष कामना की प्रेरणा से फल में आसक्त होकर बँधता है।

सर्वकर्माणि मनसा, सन्न्यस्यास्ते सुखं(म्) वशी। नवद्वारे पुरे देही, नैव कुर्वन्न कारयन्॥5.13॥

जिसकी इन्द्रियाँ और मन वश में हैं, (ऐसा) देहधारी पुरुष नौ द्वारों वाले (शरीर रूपी) पुर में सम्पूर्ण कर्मों का (विवेक पूर्वक) मन से त्याग करके निःसन्देह न करता हुआ (और) न करवाता हुआ सुख पूर्वक (अपने स्वरूप में) स्थित रहता है।

विवेचन: श्री भगवान कहते हैं कि हमें आत्मज्ञान प्राप्त करना चाहिए और यह आत्मज्ञान हमें तभी प्राप्त होगा जब हमारा साक्षात्कार स्वयं से होगा अर्थात् हमारा मन हर प्रकार के बन्धन से मुक्त हो जाएगा।

अन्तःकरण जिसके वश में है, ऐसा व्यक्ति किसी भी कार्य को करते हुए भी उसमें लिप्त नहीं होता। नव द्वारों वाले इस शरीर में सारे कर्मों का मन से त्याग कर आनन्दपूर्वक परमात्मा स्वरूप में स्थित रहता है। न ही तुम्हारे पास तन कमाया हुआ है, न ही धन कमाया हुआ है, तुम्हारे पास ऐसा क्या है जो तुमने अपना कमाया है। जब तुम्हारे पास अपना कमाया हुआ कुछ है ही नहीं तो तुम किस वस्तु का त्याग करोगे अर्थात् हमें केवल अपने मन से गलत विचारों का ही त्याग करना है और सच्चे मन से अपने कर्म करते रहना है।

इसके साथ ही इस सारगर्भित विवेचन का समापन हुआ।

विचार मंथन (प्रश्नोत्तर):

1. प्रश्नकर्ता --राकेश भैया जी।

प्रश्न--हम संसार से जुड़े हैं हमारे बच्चे हैं, पत्नी हैं, उनकी हमें याद आती है हमें उनके बारे में मन से सोचना चाहिए कि नहीं ? जब हमारा अपना कोई निजी हमसे दूर है तो हमें उस पर अपना अधिकार समझना चाहिए कि नहीं , कृपया बताइए।

उत्तर--अपने बच्चे के माध्यम से हम परमात्मा का चिन्तन कर सकते हैं। जब हम शान्त भाव से अपने बच्चे के बारे में सोचते हैं तो उस समय भी हमारा परमात्मा से एकाकार हो जाएगा। हम सांसारिक लोग हैं। जिस परमात्मा ने माँ की कोख में बच्चे को भेजा है, जिस के आशीर्वाद से हमारे अपने स्वस्थ हैं, अच्छे हैं, उस परमात्मा को नहीं भूलेंगे। अपने मन में सदैव यह भाव रखना कि वह उसका अधिक है, मेरा कम है। यह बात अपने मन में रखते हुए अमल में लाएँ तो धीमे-धीमे भगवान से एकाकार सरल हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता -- रमा दीदी

प्रश्न--क्या हम गीताजी को शाम को या रात में पढ़ सकते हैं? कभी-कभी यदि व्यस्तता के कारण एक-दो पेज पढ़ पाए या अध्याय अपूर्ण रह जाए तो क्या ठीक रहेगा? यदि किसी समय अध्याय पढ़ना छूट जाए तो कोई समस्या तो नहीं है, यदि हम अन्त में श्रीमद्भगवद्गीता जी की आरती नहीं करें तो कोई समस्या तो नहीं उत्पन्न होगी?

उत्तर--यह भगवान की पूजा अर्चना है, इसको हम किसी भी समय कर सकते हैं। यदि किसी कारणवश यह अपूर्ण रह जाता है तो यह सङ्कल्प अवश्य लें कि इसको आगे जरूर पूर्ण कर लेंगे। अपने मन में यह विचार अवश्य रखें। यदि समय है तो आरती भी अवश्य करें, श्रीभगवान जी की नजर उतारे। यदि किसी प्रकार की विवशता है तो हम अवश्य ही आगे इसको कर सकते हैं किन्तु हमारा प्रयास सदैव पूर्ण करने का ही रहना चाहिए।

प्रश्नकर्ता --- बसन्त भैया जी।

प्रश्न-- हम अपने मन को किस प्रकार नियन्त्रण में रख सकते हैं, हम अपने मन को, आसक्ति को किस प्रकार शिथिल बनाएँ? ध्यान इत्यादि तो हम करते हैं किन्तु कोई अन्य मार्ग है कि नहीं?

उत्तर-- इसके लिए केवल ध्यान ही आवश्यक नहीं है। इसके लिए प्रारम्भ में हमें स्थूल क्रियाएँ यथा -- यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि आदि (अष्टाङ्ग योग) का परिपालन करना होगा। एकदम से हम ध्यान की सीढ़ी पर नहीं बैठ सकते हैं। श्रीभगवान जी कहते हैं कि सबसे पहले हमारे कर्म की सीढ़ी होनी चाहिए। इसके बाद अभ्यास करके शरीर को एक जगह बैठाना होगा और अपनी इन्द्रियों को नियन्त्रित करना होगा। यह बार-बार अभ्यास से होता है। हमारा मन बार-बार अवश्य ही फिसलेगा, उसे पुनः बुलाना पड़ेगा। तात्पर्य यह है कि सर्वप्रथम स्थूल क्रियाओं द्वारा शरीर को साधना होगा और फिर सूक्ष्म क्रियाओं से मन को साधना होगा। इसके लिए हमें निरन्तर प्रयास करना पड़ेगा। ऐसा करने से हमें यह अनुभव अवश्य होगा कि इन प्रयासों से हमारा मन धीमे-धीमे करके जो छोटी-छोटी बातों से प्रभावित होता है, विमुख होने लगेगा। इस प्रकार हमारा मन भगवान के चिन्तन में लगने लगेगा, यह सबसे सरल मार्ग है।



हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

<https://vivechan.learngeeta.com/feedback/>

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!

हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचें। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !

संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!

आइये हम सब गीता परिवार के इस ध्येय से जुड़ जायें, और अपने इष्ट-मित्र -परिचितों को गीता कक्षा का उपहार दें।

<https://gift.learngeeta.com/>

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करें।

<https://vivechan.learngeeta.com/>

॥ गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ॥

॥ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥